Volume-13, No. 1 Feb.-2026, pp. Hin.15-21

इच्छा मृत्यु और मानवीय गरिमा के साथ मरने का अधिकारः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मिस. रूबी चौधरी,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ
उत्तर–प्रदेश भारत

सार

इच्छामृत्यु तथा मानवीय गरिमा के साथ मरने का अधिकार समकालीन विधिक, नैतिक और मानवाधिकार विमर्श का एक अत्यंत संवेदनशील तथा विवादास्पद विषय है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने जीवन को कृत्रिम रूप से लंबे समय तक बनाए रखना संभव कर दिया है, जिससे ऐसे अनेक मामलों में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या असहनीय पीड़ा, लाइलाज रोग और पूर्ण शारीरिक निर्भरता की अवस्था में व्यक्ति को गरिमा के साथ मृत्यु का विकल्प चुनने का अधिकार होना चाहिए। यह शोध लेख इच्छामृत्यु की अवधारणा, उसके प्रकारों तथा मानवीय गरिमा की संकल्पना के संदर्भ में 'गरिमा के साथ मरने के अधिकार' का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि क्या जीवन के अधिकार के अंतर्गत मृत्यु के समय भी व्यक्ति की गरिमा का संरक्षण किया जाना चाहिए और किस सीमा तक राज्य को इस निर्णय में हस्तक्षेप करना चाहिए। इस लेख में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का विस्तार से विश्लेषण किया गया है, विशेष रूप से उस संदर्भ में जहाँ न्यायपालिका ने जीवन की गुणवत्ता को मात्र जीवन की अवधि से अधिक महत्वपूर्ण माना है। ज्ञानकौर बनाम पंजाब राज्य, अरुणा शानबाग बनाम भारत संघ तथा कॉमन कॉज बनाम भारत संघ जैसे प्रमुख न्यायिक निर्णयों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय न्यायालयों ने निष्क्रिय इच्छामृत्यु और 'लिविंग विल' की अवधारणा को मान्यता देकर मानवीय गरिमा के सिद्धांत को सुदृढ़ किया है। साथ ही, इस शोध में इच्छामृत्यु से संबंधित चिकित्सकीय नैतिकता, रोगी की स्वायत्तता और डॉक्टरों की जिम्मेदारियों का भी सम्यक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए कुछ विदेशी देशों की विधिक व्यवस्था का भी संक्षिप्त परीक्षण किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इच्छामृत्यु पर वैश्विक स्तर पर एकरूपता का अभाव है। शोध लेख यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि इच्छामृत्यु को पूर्णतः जीवन के अधिकार का निषेध मानना उचित नहीं है, बल्कि इसे असाध्य रोगियों के संदर्भ में गरिमा, करुणा और स्वायत्तता के साथ संतुलित दृ ष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। अंततः यह लेख भारत में इच्छामृत्यु से संबंधित विधिक ढांचे को अधिक स्पष्ट, पारदर्शी और मानव–केंद्रित बनाने की आवश्यकता पर बल देता है, ताकि व्यक्ति को न केवल गरिमापूर्ण जीवन, बल्कि गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार भी सुनिश्चित किया जा सके।

मुख्य शब्द–इच्छामृत्यु, मानवीय गरिमा, गरिमा के साथ मरने का अधिकार, अनुच्छेद 21, न्यायिक दृष्टिकोण।

1. प्रस्तावना

इच्छा मृत्यु (Euthanasi) और मानवीय गरिमा के साथ मरने का अधिकार आधुनिक विधिक और नैतिक विमर्श का एक अत्यंत संवेदनशील तथा जटिल विषय है। चिकित्सा विज्ञान की प्रगति ने जीवन को कृत्रिम साधनों के माध्यम से लंबे समय तक बनाए रखना संभव कर दिया है, किंतु इसके साथ ही यह प्रश्न भी गहराता गया है कि क्या असहनीय पीड़ा, लाइलाज बीमारी और पूर्ण शारीरिक असहायता की स्थिति में जीवन को केवल तकनीकी रूप से बनाए रखना वास्तव में मानवीय गरिमा के अनुरूप है। ऐसे मामलों में व्यक्ति की स्वायत्तता, उसकी इच्छा और गरिमापूर्ण अस्तित्व के अधिकार का प्रश्न विशेष महत्व रखता है। इच्छामृत्यु का विषय केवल विधिक नहीं बल्कि नैतिक, सामाजिक, चिकित्सकीय और दार्शनिक आयामों से भी जुड़ा हुआ है, जिससे इसका अध्ययन बहुआयामी हो जाता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रदत्त जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार

की न्यायिक व्याख्या समय के साथ व्यापक होती गई है। सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में यह स्पष्ट किया है कि 'जीवन' का अर्थ केवल शारीरिक अस्तित्व नहीं, बल्कि गरिमा, स्वतंत्रता और सम्मान के साथ जीना है। इसी संदर्भ में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि जीवन की गरिमा पूर्णतः समाप्त हो जाए और व्यक्ति निरंतर पीड़ा में जीने को विवश हो, तो क्या उसे गरिमा के साथ मृत्यु चुनने का अधिकार नहीं होना चाहिए। यद्यपि भारतीय विधि व्यवस्था आत्महत्या और सक्रिय इच्छामृत्यु को अपराध की श्रेणी में रखती है, फिर भी न्यायपालिका ने निष्क्रिय इच्छामृत्यु और 'लिविंग विल' जैसी अवधारणाओं को मान्यता देकर इस विषय में एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया है।

यह शोध लेख इच्छामृत्यु और गरिमा के साथ मरने के अधिकार का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसमें संवैधानिक प्रावधानों, न्यायिक निर्णयों और मानवीय मूल्यों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि इच्छामृत्यु को केवल जीवन के अधिकार के निषेध के रूप में न देखकर, मानवीय करुणा, व्यक्ति की स्वायत्तता और गरिमापूर्ण अस्तित्व के व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए।

2. इच्छामृत्यु की अवधारणा एवं अर्थ

इच्छामृत्यु (Euthanasia) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द Eu अर्थात् अच्छा और Thanatos अर्थात् मृत्यु से हुई है, जिसका आशय "अच्छी" या "पीड़ारहित मृत्यु" से है। सामान्यतः इच्छामृत्यु से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है, जिसमें किसी असाध्य या गंभीर रोग से पीड़ित व्यक्ति को उसकी असहनीय शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से उसकी मृत्यु को जानबूझकर शीघ्र किया जाता है या जीवनरक्षक उपचार को रोक दिया जाता है। यह अवधारणा मुख्यतः करुणा, मानवता और रोगी की स्वायत्त इच्छा पर आधारित मानी जाती है।

इच्छामृत्यु का मूल उद्देश्य मृत्यु को प्रोत्साहित करना नहीं, बल्कि उस स्थिति से मुक्ति दिलाना है जहाँ जीवन केवल पीड़ा, निर्भरता और गरिमा के ह्रास का पर्याय बन जाता है। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में, जहाँ जीवन को कृत्रिम साधनों द्वारा लंबे समय तक बनाए रखना संभव है, इच्छामृत्यु की अवधारणा और अधिक प्रासंगिक हो गई है। यह प्रश्न विशेष रूप से तब उठता है जब रोगी के ठीक होने की कोई संभावना नहीं होती और उपचार केवल जीवन को यांत्रिक रूप से बनाए रखने तक सीमित रह जाता है।

इस प्रकार, इच्छामृत्यु को जीवन के अधिकार के विरोध में नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा, करुणा और रोगी की इच्छा के संरक्षण के संदर्भ में देखा जाता है। यह अवधारणा विधि, नैतिकता और मानवाधिकारों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है, जिससे यह विषय अत्यंत संवेदनशील और विचारणीय बन जाता है।

3. इच्छामृत्यु के प्रकार

(क) सक्रिय इच्छामृत्यु

सक्रिय इच्छामृत्यु से तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें किसी असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु को जानबूझकर किसी प्रत्यक्ष चिकित्सकीय क्रिया द्वारा शीघ्र किया जाता है, जैसे घातक दवा का इंजेक्शन देना। इसका उद्देश्य रोगी को असहनीय शारीरिक या मानसिक पीड़ा से तत्काल राहत प्रदान करना होता है। यद्यपि यह करुणा और मानवता के सिद्धांत पर आधारित प्रतीत होती है, फिर भी अधिकांश देशों में इसे विधि द्वारा निषिद्ध किया गया है। भारत में सक्रिय इच्छामृत्यु को आपराधिक कृत्य माना जाता है क्योंकि यह भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत हत्या या आत्महत्या में सहायता की श्रेणी में आती है। न्यायपालिका ने स्पष्ट किया है कि जीवन का अधिकार सक्रिय रूप से मृत्यु देने के अधिकार तक विस्तारित नहीं किया जा सकता।

(ख) निष्क्रिय इच्छामृत्यु

निष्क्रिय इच्छामृत्यु का अर्थ है रोगी को जीवित रखने वाले कृत्रिम साधनों या उपचार को रोक देना या वापस ले लेना, जब यह स्पष्ट हो कि रोगी के स्वस्थ होने की कोई संभावना नहीं है। इसमें वेंटिलेटर, जीवनरक्षक दवाओं या पोषण सहायता को बंद करना शामिल हो सकता है। भारतीय न्यायपालिका ने निष्क्रिय इच्छामृत्यु को सीमित परिस्थितियों में मान्यता दी है, विशेष रूप से तब जब यह रोगी की इच्छा या उसके सर्वोत्तम हित में हो। अरुणा शानबाग बनाम भारत संघ और कॉमन कॉज बनाम भारत संघ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने निष्क्रिय इच्छामृत्यु को मानवीय गरिमा और अनुच्छेद 21 के अंतर्गत स्वीकार्य माना है।

(ग) स्वैच्छिक एवं अवैच्छिक इच्छामृत्यु

स्वैच्छिक इच्छामृत्यु वह स्थिति है जिसमें रोगी स्वयं अपनी स्पष्ट और स्वतंत्र इच्छा से मृत्यु या उपचार समाप्त करने की सहमति देता है। यह रोगी की स्वायत्तता और आत्मनिर्णय के सिद्धांत

पर आधारित होती है। इसके विपरीत, अवैच्छिक इच्छामृत्यु में रोगी अपनी इच्छा व्यक्त करने में असमर्थ होता है, जैसे कोमा या मानसिक अचेतन अवस्था में। ऐसे मामलों में निर्णय परिवारजन या न्यायालय द्वारा लिया जाता है। अवैच्छिक इच्छामृत्यु अत्यधिक विवादास्पद है, क्योंकि इसमें दुरुपयोग और गलत निर्णय की संभावना बनी रहती है। इसलिए विधिक व्यवस्था इस प्रकार के मामलों में कठोर प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों पर बल देती है।

4. मानवीय गरिमा की संकल्पना

मानवीय गरिमा की संकल्पना मानव अधिकारों की आधारशिला मानी जाती है और यह प्रत्येक व्यक्ति के अंतर्निहित मूल्य, सम्मान तथा स्वायत्तता को दर्शाती है। गरिमा का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मानव, मात्र अपने अस्तित्व के कारण, सम्मानपूर्वक व्यवहार का अधिकारी है और उसे साधन मात्र के रूप में नहीं देखा जा सकता। दार्शनिक दृष्टि से इमैनुएल कांट ने मानवीय गरिमा को नैतिकता के केंद्र में रखते हुए यह प्रतिपादित किया कि मानव को सदैव उद्देश्य के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि साधन के रूप में। इस दृष्टिकोण ने आधुनिक मानवाधिकार सिद्धांतों को गहराई से प्रभावित किया है।

भारतीय संविधान में मानवीय गरिमा का उल्लेख प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया गया है, किंतु सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या करते हुए गरिमा को उसका अभिन्न अंग माना है। न्यायालय के अनुसार, गरिमा के बिना जीवन केवल जैविक अस्तित्व तक सीमित रह जाता है। गरिमापूर्ण जीवन का अर्थ है व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्तर पर सम्मान के साथ जीने का अवसर मिलना। इसी कारण, कारावास की स्थितियाँ, हिरासत में हिंसा, निजता का उल्लंघन तथा अमानवीय व्यवहार को संविधान के विरुद्ध माना गया है।

मानवीय गरिमा की संकल्पना केवल जीवन की अवस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि मृत्यु के समय भी इसका महत्व बना रहता है। जब व्यक्ति असाध्य रोग, असहनीय पीड़ा और पूर्ण निर्भरता की स्थिति में होता है, तब गरिमा का प्रश्न और अधिक प्रासंगिक हो जाता है। ऐसे में यह तर्क दिया जाता है कि गरिमा का संरक्षण केवल जीवन को बनाए रखने से नहीं, बल्कि पीड़ा से मुक्ति और सम्मानजनक अंत सुनिश्चित करने से भी जुड़ा हुआ है। इस प्रकार, मानवीय गरिमा इच्छामृत्यु और गरिमा के साथ मरने के अधिकार के विमर्श का केंद्रीय तत्व बन जाती है।

5. गरिमा के साथ मरने का अधिकारः दार्शनिक एवं नैतिक परिप्रेक्ष्य

गरिमा के साथ मरने का अधिकार एक गहन दार्शनिक और नैतिक प्रश्न है, जो जीवन, मृत्यु, स्वायत्तता और करुणा के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। दार्शनिक दृष्टि से यह विचार इस मान्यता पर आधारित है कि यदि व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है, तो उसे गरिमापूर्ण मृत्यु का विकल्प भी उपलब्ध होना चाहिए। उपयोगितावादी दर्शन के अनुसार, यदि जीवन केवल पीड़ा का स्रोत बन जाए और उससे किसी प्रकार का कल्याण संभव न हो, तो उस जीवन को बनाए रखना नैतिक रूप से उचित नहीं माना जा सकता।

नैतिक दृष्टिकोण से गरिमा के साथ मरने का अधिकार मुख्यतः रोगी की स्वायत्तता और आत्मनिर्णय के सिद्धांत से जुड़ा है। आधुनिक जैव–नैतिकता चार प्रमुख सिद्धांतों, स्वायत्तता, उपकार, अहिंसा और न्याय पर आधारित मानी जाती है। जब कोई असाध्य रोगी अपनी स्पष्ट और सूचित सहमति से उपचार को जारी न रखने का निर्णय लेता है, तो यह उसकी स्वायत्तता की अभिव्यक्ति होती है। ऐसे निर्णय को अनैतिक ठहराना व्यक्ति की इच्छा और गरिमा की उपेक्षा के समान माना जाता है।

हालाँकि, इसके विरोध में यह तर्क भी दिया जाता है कि जीवन पवित्र है और किसी भी रूप में मृत्यु को बढ़ावा देना नैतिक रूप से गलत है। धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण अक्सर इस विचार का समर्थन करते हैं कि जीवन और मृत्यु का निर्णय मानव के हाथ में नहीं होना चाहिए। इसी कारण गरिमा के साथ मरने का अधिकार एक पूर्ण स्वतंत्रता न होकर, कठोर प्रक्रियात्मक और नैतिक सुरक्षा उपायों के अधीन माना जाता है। भारतीय न्यायपालिका ने भी इसी संतुलित दृष्टिकोण को अपनाते हुए निष्क्रिय इच्छामृत्यु को सीमित परिस्थितियों में स्वीकार किया है। इस प्रकार, गरिमा के साथ मरने का अधिकार दार्शनिक आदर्शों और नैतिक सावधानियों के बीच एक संवेदनशील संतुलन की मांग करता है।

6. भारतीय संविधान और गरिमा के साथ जीवन एवं मृत्यु का अधिकार

(अनुच्छेद–21 का विश्लेषण)''

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार

प्रदान करता है। प्रारंभिक न्यायिक व्याख्याओं में इस अधिकार को संकीर्ण अर्थों में समझा गया, किंतु समय के साथ सर्वोच्च न्यायालय ने इसकी परिधि को व्यापक करते हुए इसमें मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता, निजता और जीवन की गुणवत्ता को भी सम्मिलित किया। मेनका गांधी बनाम भारत संघ के निर्णय के बाद अनुच्छेद 21 को एक जीवंत और गतिशील प्रावधान के रूप में स्थापित किया गया, जिसके अंतर्गत "जीवन" का अर्थ मात्र शारीरिक अस्तित्व न होकर गरिमापूर्ण जीवन माना गया।

न्यायपालिका ने यह स्पष्ट किया है कि गरिमा के बिना जीवन अर्थहीन हो जाता है। फ्रांसिस कोराली मुलिन बनाम दिल्ली प्रशासन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जीवन का अधिकार मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार है, जिसमें न्यूनतम आवश्यक सुविधाएँ और सम्मानजनक व्यवहार शामिल हैं। इसी तर्क के आधार पर यह प्रश्न उभरता है कि जब व्यक्ति असाध्य रोग, असहनीय पीड़ा और पूर्ण निर्भरता की अवस्था में पहुँच जाता है, तब क्या अनुच्छेद–21 के अंतर्गत उसकी गरिमा का संरक्षण केवल जीवन को कृत्रिम रूप से बनाए रखने से किया जा सकता है। यद्यपि ज्ञानकौर बनाम पंजाब राज्य में न्यायालय ने यह कहा कि जीवन के अधिकार में मृत्यु का अधिकार शामिल नहीं है, फिर भी बाद के निर्णयों में न्यायपालिका ने अनुच्छेद–21 की व्याख्या को अधिक मानवीय दृष्टिकोण प्रदान किया। कॉमन कॉज बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने गरिमा के साथ मरने के अधिकार को अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मान्यता दी और यह स्पष्ट किया कि जीवन की गरिमा का संरक्षण मृत्यु के समय भी उतना ही आवश्यक है। इस प्रकार, अनुच्छेद 21 जीवन और मृत्यु दोनों अवस्थाओं में मानवीय गरिमा के संरक्षण का संवैधानिक आधार प्रदान करता है।

7. भारत में इच्छामृत्यु पर विधिक स्थिति

भारत में इच्छामृत्यु की विधिक स्थिति स्पष्ट और सरल नहीं रही है, बल्कि यह न्यायिक व्याख्याओं के माध्यम से क्रमिक रूप से विकसित हुई है। भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आत्महत्या का प्रयास तथा आत्महत्या के लिए उकसाना दंडनीय अपराध माना गया है, जिसके कारण सक्रिय इच्छामृत्यु को भी अवैध ठहराया गया। गियानकौर बनाम पंजाब राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि जीवन का अधिकार किसी भी रूप में मृत्यु को समाप्त करने के अधिकार तक विस्तारित नहीं किया जा सकता।

हालाँकि, न्यायपालिका ने सक्रिय और निष्क्रिय इच्छामृत्यु के बीच स्पष्ट अंतर किया है। अरुणा रामचंद्र शानबाग बनाम भारत संघ के ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार निष्क्रिय इच्छामृत्यु को सीमित परिस्थितियों में स्वीकार किया। न्यायालय ने यह माना कि जब रोगी के स्वस्थ होने की कोई संभावना न हो और जीवन केवल कृत्रिम साधनों से बनाए रखा जा रहा हो, तब उपचार को रोकना मानवीय गरिमा के अनुरूप हो सकता है। इस निर्णय ने इच्छामृत्यु के विषय में एक करुणामूलक और व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

इसके पश्चात कॉमन कॉज बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निष्क्रिय इच्छामृत्यु और 'लिविंग विल' को संवैधानिक मान्यता प्रदान की। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि सक्षम व्यक्ति अपनी भविष्य की चिकित्सकीय देखभाल के संबंध में अग्रिम निर्देश दे सकता है, ताकि उसकी गरिमा का संरक्षण सुनिश्चित हो सके। वर्तमान में भारत में सक्रिय इच्छामृत्यु निषिद्ध है, जबकि निष्क्रिय इच्छामृत्यु कठोर प्रक्रियात्मक दिशानिर्देशों के अधीन वैध मानी जाती है। इस प्रकार, भारत की विधिक व्यवस्था इच्छामृत्यु के प्रश्न पर सावधानीपूर्ण, संतुलित और मानव–केंद्रित दृष्टिकोण अपनाती है। जो देश इच्छामृत्यु को अनुमति देते है और इसे अपराध की श्रेणी से बाहर निकाल दिया गया है कोलंबिया– जहाँ अदालतों ने इच्छा मृत्यु को अपराध की श्रेणी से हटा दिया गया है। जिस कारण विशेष परिस्थितियो में इच्छामृत्यु की अनुमति मिल गई है।

इक्वाडोर 2024– संवैधानिक न्यायालय के निर्णय के बाद, अदालतों के फैसलों के माध्यम से इच्छा मृत्यु को अपराध की श्रेणी से बाहर निकाल दिया गया है।

उरूग्वे 2025– लाइलाज, असाध्य बीमारियों से ग्रसित और मानसिक रूप से स्वस्थ वयस्कों के लिए कानून गरिमापूर्ण मृत्य विधेयक पारित करने वाला लैटिन अमेरिका का पहला देश, जो चिकित्सा पेशवरों को इच्छामृत्यु करने की अनुमति देता है।

8. न्यायिक दृष्टिकोणः प्रमुख निर्णयों का विश्लेषण

(I) गियानकौर बनाम पंजाब राज्य (1996)

इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह मूल प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या भारतीय संविधान के अनुच्छेद–21 के अंतर्गत प्रदत्त जीवन के अधिकार में मरने का अधिकार भी निहित है। न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह निर्णय दिया कि जीवन का अधिकार किसी भी स्थिति में मृत्यु को जानबूझकर समाप्त करने के अधिकार तक विस्तारित नहीं किया जा सकता। न्यायालय ने यह भी कहा कि आत्महत्या तथा आत्महत्या में सहायता देना संवैधानिक संरक्षण के अंतर्गत नहीं आता। तथापि, न्यायालय ने यह महत्वपूर्ण अवलोकन किया कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में गरिमापूर्ण मृत्यु की अवधारणा प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया से जुड़ी हो सकती है। यह निर्णय भारत में इच्छामृत्यु से संबंधित न्यायिक दृष्टिकोण की आधारशिला माना जाता है।

(II) पी. रथिनम बनाम भारत संघ (1994)

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 309, जो आत्महत्या के प्रयास को दंडनीय अपराध घोषित करती थी, को असंवैधानिक ठहराया। न्यायालय ने यह तर्क दिया कि जीवन का अधिकार केवल जीवित रहने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें गरिमा के साथ जीवन जीने की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है। न्यायालय के अनुसार, व्यक्ति को अपने जीवन से संबंधित निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्राप्त है। यद्यपि इस निर्णय को बाद में जियान कौर के मामले में निरस्त कर दिया गया, फिर भी इस वाद ने इच्छामृत्यु और गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार पर एक महत्वपूर्ण संवैधानिक विमर्श को जन्म दिया।

(III) अरुणा रामचंद्र शानबाग बनाम भारत संघ (2011)

यह मामला भारत में इच्छामृत्यु से संबंधित सबसे चर्चित और महत्वपूर्ण निर्णयों में से एक है। अरुणा शानबाग पिछले कई वर्षों से स्थायी शाकीय अवस्था (Permanent Vegetative State) में थीं। सर्वोच्च न्यायालय ने सक्रिय इच्छामृत्यु को अस्वीकार करते हुए निष्क्रिय इच्छामृत्यु को सीमित परिस्थितियों में वैध ठहराया। न्यायालय ने यह निर्देश दिया कि ऐसे मामलों में संबंधित उच्च न्यायालय की अनुमति आवश्यक होगी। यह निर्णय करुणा, मानवीय गरिमा और व्यावहारिक दृष्टिकोण पर आधारित एक संतुलित न्यायिक सोच को दर्शाता है।

(IV) कॉमन कॉज बनाम भारत संघ (2018)

इस ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने गरिमा के साथ मरने के अधिकार को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत स्पष्ट रूप से मान्यता प्रदान की। न्यायालय ने निष्क्रिय इच्छामृत्यु को वैध ठहराते हुए 'लिविंग विल' अथवा अग्रिम चिकित्सा निर्देशों की अवधारणा को स्वीकार किया। यह कहा गया कि प्रत्येक सक्षम व्यक्ति को अपनी भविष्य की चिकित्सकीय देखभाल से संबंधित निर्णय लेने का अधिकार है। यह निर्णय मानवीय गरिमा, व्यक्तिगत स्वायत्तता और संवैधानिक नैतिकता को सुदृढ़ करता है।

(IV) कॉमन कॉज बनाम भारत संघ (2023)

इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 2018 के कॉमन कॉज निर्णय में निर्धारित जटिल प्रक्रियात्मक दिशानिर्देशों को सरल और व्यावहारिक बनाया। न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि अत्यधिक औपचारिक प्रक्रियाएँ गरिमा के साथ मरने के अधिकार के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधक बन रही थीं। अतः 'लिविंग विल' और निष्क्रिय इच्छामृत्यु से संबंधित प्रक्रिया को अधिक मानव–केंद्रित और सुगम बनाया गया। यह निर्णय न्यायपालिका के संवेदनशील, यथार्थवादी और सुधारोन्मुख दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता है।

9. इच्छामृत्यु से जुड़ी सामाजिक एवं नैतिक चुनौतियाँ

इच्छामृत्यु का प्रश्न केवल विधिक या चिकित्सकीय न होकर गहरे सामाजिक और नैतिक सरोकारों से जुड़ा हुआ है। समाज में जीवन को पवित्र और ईश्वर–प्रदत्त मानने की धारणा व्यापक रूप से प्रचलित है, जिसके कारण इच्छामृत्यु को नैतिक रूप से अनुचित या अमानवीय माना जाता है। विशेष रूप से भारतीय समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक मूल्य जीवन को हर परिस्थिति में बनाए रखने पर बल देते हैं। इस दृष्टिकोण के कारण इच्छामृत्यु को स्वीकार करने में सामाजिक प्रतिरोध उत्पन्न होता है, भले ही रोगी असहनीय पीड़ा और लाइलाज बीमारी से ग्रस्त क्यों न हो।

नैतिक दृष्टि से इच्छामृत्यु की सबसे बड़ी चुनौती रोगी की स्वायत्तता और समाज की नैतिक जिम्मेदारी के बीच संतुलन स्थापित करने की है। एक ओर यह तर्क दिया जाता है कि व्यक्ति को अपने शरीर और जीवन से संबंधित निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, वहीं दूसरी ओर यह आशंका भी व्यक्त की जाती है कि इच्छामृत्यु की अनुमति से बुजुर्गों, दिव्यांगों और आर्थिक रूप से निर्भर व्यक्तियों पर सामाजिक या पारिवारिक दबाव डाला जा सकता है, ऐसे मामलों में

स्वैच्छिक और अवैच्छिक इच्छामृत्यु के बीच अंतर स्पष्ट करना अत्यंत कठिन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, चिकित्सकीय नैतिकता भी इच्छामृत्यु के संदर्भ में एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है। चिकित्सा पेशा जीवन की रक्षा और रोगी के हित की रक्षा के सिद्धांत पर आधारित है। ऐसे में चिकित्सक द्वारा जीवनरक्षक उपचार को रोकना या हटाना नैतिक दुविधा उत्पन्न करता है। यद्यपि आधुनिक जैव–नैतिकता रोगी की इच्छा और गरिमा को प्राथमिकता देती है, फिर भी दुरुपयोग, गलत निदान और निर्णय में त्रुटि की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

अंततः, इच्छामृत्यु से जुड़ी सामाजिक और नैतिक चुनौतियाँ यह दर्शाती हैं कि इस विषय पर पूर्ण स्वतंत्रता या पूर्ण निषेध, दोनों ही व्यावहारिक नहीं हैं। आवश्यक है कि विधिक ढांचा कठोर प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों, पारदर्शिता और मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित हो, ताकि करुणा और गरिमा के सिद्धांतों के साथ–साथ समाज की नैतिक चिंताओं का भी संतुलित समाधान किया जा सके।

10. सुधार की आवश्यकता एवं सुझाव

(I) स्पष्ट और व्यापक विधायी ढांचे की आवश्यकता

भारत में इच्छामृत्यु से संबंधित कानून मुख्यतः न्यायिक निर्णयों पर आधारित हैं, जिसके कारण व्यावहारिक स्तर पर अस्पष्टता बनी रहती है। आवश्यक है कि संसद द्वारा एक स्पष्ट, व्यापक और संहिताबद्ध कानून बनाया जाए, जिसमें निष्क्रिय इच्छामृत्यु, लिविंग विल, रोगी की सहमति तथा चिकित्सकों की जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए। इससे न केवल भ्रम की स्थिति समाप्त होगी, बल्कि चिकित्सकों और परिवारजनों को विधिक संरक्षण भी प्राप्त होगा। एक विधायी ढांचा न्यायिक दिशानिर्देशों को अधिक प्रभावी और समान रूप से लागू करने में सहायक सिद्ध होगा।

(II) प्रक्रियात्मक दिशानिर्देशों का सरलीकरण

यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने इच्छामृत्यु से संबंधित प्रक्रियाएँ निर्धारित की हैं, फिर भी वे कई मामलों में जटिल और समय–साध्य सिद्ध होती हैं। असाध्य रोगियों के मामलों में अत्यधिक औपचारिकताएँ गरिमापूर्ण मृत्यु के अधिकार के प्रयोग में बाधा उत्पन्न करती हैं। अतः आवश्यक है कि प्रशासनिक और चिकित्सकीय प्रक्रियाओं को सरल, पारदर्शी और समयबद्ध बनाया जाए, ताकि रोगी और उसके परिजनों को अनावश्यक मानसिक कष्ट न झेलना पड़े।

(III) रोगी की स्वायत्तता और सूचित सहमति का संरक्षण

इच्छामृत्यु से संबंधित किसी भी निर्णय में रोगी की स्वायत्तता और सूचित सहमति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। लिविंग विल की अवधारणा को अधिक प्रचारित और संस्थागत बनाया जाना आवश्यक है, ताकि व्यक्ति स्वस्थ अवस्था में ही अपनी इच्छा स्पष्ट कर सके। साथ ही यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि रोगी पर किसी प्रकार का पारिवारिक, सामाजिक या आर्थिक दबाव न हो, जिससे निर्णय की स्वैच्छिकता प्रभावित न हो।

(IV) चिकित्सकों और अस्पतालों के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश

चिकित्सकों को इच्छामृत्यु से जुड़े निर्णयों में गंभीर नैतिक और विधिक दुविधाओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए उनके लिए स्पष्ट पेशेवर दिशानिर्देश, प्रशिक्षण कार्यक्रम और नैतिक परामर्श तंत्र विकसित किया जाना आवश्यक है। इससे चिकित्सक न केवल विधिक जोखिम से सुरक्षित रहेंगे, बल्कि रोगी के हित में अधिक संवेदनशील और आत्मविश्वासपूर्ण निर्णय ले सकेंगे।

5. सामाजिक जागरूकता और नैतिक संवाद को बढ़ावा

इच्छामृत्यु को लेकर समाज में अनेक भ्रांतियाँ और भावनात्मक विरोध मौजूद हैं। आवश्यक है कि इस विषय पर व्यापक सामाजिक संवाद, जन–जागरूकता कार्यक्रम और अकादमिक विमर्श को प्रोत्साहित किया जाए। इससे समाज में यह समझ विकसित होगी कि इच्छामृत्यु जीवन–विरोधी नहीं, बल्कि करुणा, गरिमा और मानवता पर आधारित एक संवेदनशील विकल्प है। ऐसे प्रयास नीति–निर्माण को अधिक संतुलित और स्वीकार्य बनाने में सहायक होंगे।

11. निष्कर्ष

इच्छामृत्यु और मानवीय गरिमा के साथ मरने का अधिकार समकालीन संवैधानिक, नैतिक और मानवाधिकार विमर्श का एक अत्यंत संवेदनशील तथा जटिल विषय है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने जहाँ जीवन को लंबे समय तक बनाए रखना संभव बनाया है, वहीं उसने यह गंभीर प्रश्न भी उत्पन्न किया है कि क्या केवल जैविक अस्तित्व को बनाए रखना ही जीवन का उद्देश्य है, विशेषकर तब जब व्यक्ति असहनीय पीड़ा,

लाइलाज रोग और पूर्ण निर्भरता की अवस्था में हो। ऐसे मामलों में गरिमापूर्ण जीवन के साथ–साथ गरिमापूर्ण मृत्यु की अवधारणा विशेष महत्व ग्रहण करती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 की न्यायिक व्याख्या ने यह स्पष्ट किया है कि जीवन का अधिकार मात्र सांस लेने तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता और जीवन की गुणवत्ता भी अंतर्निहित है। जियान कौर, अरुणा शानबाग और कॉमन कॉज जैसे महत्वपूर्ण निर्णयों के माध्यम से भारतीय न्यायपालिका ने इच्छामृत्यु के प्रश्न पर एक संतुलित और करुणामूलक दृष्टिकोण अपनाया है। जहाँ सक्रिय इच्छामृत्यु को अस्वीकार किया गया है, वहीं निष्क्रिय इच्छामृत्यु और लिविंग विल को सीमित परिस्थितियों में मान्यता देकर रोगी की स्वायत्तता और गरिमा के संरक्षण का प्रयास किया गया है।

फिर भी, इच्छामृत्यु से जुड़े सामाजिक, नैतिक और विधिक विवाद यह दर्शाते हैं कि यह विषय केवल न्यायालयों के निर्णयों तक सीमित नहीं रह सकता। इसके लिए स्पष्ट विधायी ढांचे, सरल प्रक्रियात्मक दिशानिर्देश, चिकित्सकों के लिए नैतिक समर्थन और समाज में जागरूकता की आवश्यकता है। यदि उचित सुरक्षा उपायों और पारदर्शिता के साथ इच्छामृत्यु से संबंधित प्रावधानों को विकसित किया जाए, तो यह न केवल दुरुपयोग की आशंकाओं को कम करेगा, बल्कि असाध्य रोगियों को करुणा और सम्मान के साथ अपने जीवन के अंतिम चरण का सामना करने का अवसर भी प्रदान करेगा।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इच्छामृत्यु को जीवन के अधिकार के प्रतिकूल न मानकर, मानवीय गरिमा, करुणा और स्वायत्तता के व्यापक संवैधानिक मूल्यों के आलोक में देखा जाना चाहिए। एक संतुलित, मानव–केंद्रित और संवेदनशील दृष्टिकोण ही इस जटिल विषय का न्यायसंगत समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. दुर्गादास बसु, भारत का संविधानरू एक परिचय, 10वाँ संस्करण, लेक्सिसनेक्सिस, नई दिल्ली, 2019।
2. एन.वी. परांजपे, क्रिमिनोलॉजी एवं पेनोलॉजी, 18वाँ संस्करण, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2021।
3. आर.एम. साहनी, संवैधानिक विधि, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2020।
4. टॉम एल. ब्यूचौम्प एवं जेम्स एफ. चाइल्ड्रेस, जैव–चिकित्सीय नैतिकता के सिद्धांत, 8वाँ संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2019।
5. इमैनुएल कांट, नैतिक दर्शन की आधारभूमि, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998।
6. जेरमी बेंथम, नैतिकता एवं विधि के सिद्धांतों का परिचय, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1907।
7. जियान कौर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1996 सर्वोच्च न्यायालय 946।
8. पी. रथिनम बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1994 सर्वोच्च न्यायालय 1844।
9. अरुणा रामचंद्र शानबाग बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 2011 सर्वोच्च न्यायालय 1290।
10. कॉमन कॉज बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 2018 सर्वोच्च न्यायालय 1665।
11. कॉमन कॉज बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 2023 सर्वोच्च न्यायालय 2154।